International Journal of Yogic, Human Movement and Sports Sciences 2019; 4(1): 1338-1341

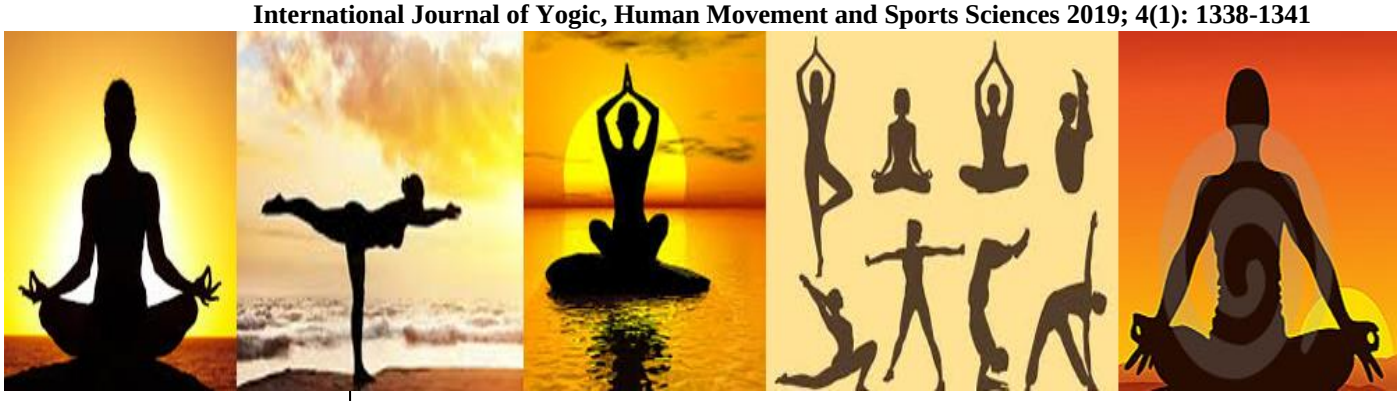

ISSN: 2456-4419
Impact Factor: (RJIF): 5.18
Yoga 2019; 4(1): 1338-1341
© 2019 Yoga
www.theyogicjournal.com
Received: 13-11-2018
Accepted: 15-12-2018

डॉ. श्याम सुंदर पाल
योग विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय विश्व विद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश भारत

Correspondence
डॉ. श्याम सुंदर पाल
योग विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय विश्व विद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश भारत

समाधि में चिरस्थायित्व हेतु प्रत्याहार की भूमिका

डॉ. श्याम सुंदर पाल

पातंजलि योग सूत्र मे संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात समाधि का वर्णन किया गया है ये दोनों ही समाधिओं मे से संप्रज्ञात समाधि एक ऐसी अवस्था है जिसमे यदि साधक ने अपने मन द्वारा इंद्रियों की वासनाओं एवं द्वन्दों से स्वयं को तटस्थ न किया तो साधना में अवनयन निश्चित है असंप्रज्ञात समाधि मे चिरस्थायित्व ही संप्रज्ञात समाधि की ओर ले जाता है एवं जब साधक पूर्णरूप से निर्द्वंद हो तो वह असंप्रज्ञात समाधि मे स्थायी रूप से स्थिर होकर कैवल्य का अधिकारी बन जाता है । समाधि मे स्थिर होने हेतु द्वंद युगलों यथा शीत -उष्ण, लाभ हानि, काय पराजय एवं सुख दुख आदि जैसे इंद्रिय समवेदनाओं को स्वयं के लिए अप्रभावी बनाना होता है यदि थोड़ा भी विचलन हुआ तो साधना में विघ्न होने से साधक का पुनः अधम अवस्था मे पतित होना निश्चित है इसलिय समाधि मे चिरस्थायित्व हेतु पुनः प्रत्याहार ही सबसे आवश्यक अभ्यास बनकर उभरता है । प्रत्याहार नहीं होगा तो धारणा एवं ध्यान भी नहीं होगा । इनके अभाव में समाधि की सिद्धी तो हो ही नहीं सकती। इसलिए इंद्रियों को द्वंदों से निसप्रभावी करते हुये निर्द्वंद बना कर तटस्थता की स्थिति का विकास करना ही सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता सिद्ध होती है। समाधि में चिरस्थायित्व हेतु प्रत्याहार की भूमिका को जानने हेतु हमें इसे तटस्थता एवं निर्द्वंदता के संदर्भ में समझना होगा:

तटस्थता

तटस्थता का समाधि से संबंध में उसमे प्रत्याहार की भूमिका को जानने हेतु हमें सर्व प्रथम तटस्थता की अवस्था में साधक की स्थिति को जानना चाहिए। तटस्थता की अवस्था मे साधक बाह्य कारणों के संवेदनाओं से संवेदित नहीं होता । वह मात्र साक्ष्यभाव से घटनाओं को घटित होते हुये देखता है । वह उन्हे इस प्रकार देखता है जैसे मन के रंगमंच पर उससे भिन्न अन्य व्यक्तियों

का इस प्रकार का खेल एवं अभिनयहो रहा हो, पहले तो वह उनसे रस लेता है और अभ्यास के कारण बारंबार उनके साथ तदात्मा स्थापित करता है बाद मे वह उन्हे पूर्णतया स्थिर और निर्लिप्त भाव से देखता है और अंत में अपनी नीरव सत्ता की शांति ही नहीं, अपितु शुद्ध आनंद भी प्रपट करके उनकी अवास्तविकता पर इस प्रकार मुसकुराता है जिस प्रकार कोई आदमी एक बच्चे के जो खेल रहा है और उस खेल में अपने आपको बिलकुल भूल जाता है काल्पनिक सुख दुखों पर मुस्कुराया करता है । दूसरे वह जन जाता है कि मई अनुमति का स्वामी हूँ जब वह मन अनुमति को वापस ले लेता है तब एक और महत्वपूर्ण घटना घटित होती है भावमय मन सामान्यतया शांत और पवित्र हो जाता है तथा इन प्रतिक्रियाओं से मुक्त भी और जब ये आती भी है तब भी ये पहले कि तरह भीतर से नहीं उठती अपितु बाहर से आने वाले ऐसे संस्कारों के समान उस पर प्रतिबिम्बित होती हुई दिखाई देती है जिन्हे उसकी स्नायुए अभी भी प्रत्युत्तर दे सकती है परंतु आगे चलकर प्रत्युत्तर देने कि यह आदत भी समाप्त हो जाती है तत्पश्चात समय आने पर भावमय मन अपने त्यागे हुये आवेशों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है । तटस्थ उदासीनता मन मे से कामना को निकाल फेकती है जो अहंभाव वस्तुओं पर इन द्वंदात्मक मूल्यों को थोपता है उसे त्याग देती है और कामना के स्थान पर तटस्थ एवं उदासीनता शांति को तथा विकार के स्थान पर शुद्ध आत्मा को प्रतिष्ठित करती है। वह शुद्ध आत्मा जगत के आघातों से अशांत, उत्तेजित या विचलित नहीं होती।

निर्द्वंदता / साम्य

प्रत्याहार द्वारा निर्द्वंदता के विकास को समझने हेतु उससे पूर्व द्वंद को समझना होगा। द्वंद यह है कि हमारे भावप्रधान मन में एक ओर तो उदासीनता एवं स्थिरता का भाव हो सकता है और दूसरी ओर सक्रिय प्रेम और आनंद का। भाव प्रधान मन के लिए उससीनता का तात्पर्य यह है कि जब हमे किसी इंद्रिय से संबन्धित अनुकूलता या सुख प्रपट नहीं हो पता है तो हम उसके प्रति आनंदानुभूति रखते है । जैसे कि शीत कल में शीत से बचने के लिए अग्नि या धूप से त्वचा को सुख का अनुभव होता है। जबकि वास्तव में निर्द्वंद होने का वास्तविक अर्थ यह है कि वह वस्तु प्राप्त होने अथवा ना होने पर साम्य बनाए रखना ।

अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता आदि सभी को समान मानते हुये हमारा आधार होना चाहिए समता न कि उदासीनता, समतापूर्ण तितिक्षा, निष्पक्ष उदासीनता, हर्ष, शोक के कारण उपस्थित होने पर उनके प्रति हर्ष या शोक के रूप में किसी प्रकार कि प्रतिक्रिया किए बिना शांत समर्पण ये सब समता का आरंभिक सोपान एवं अभावात्मक आधार है परंतु समता तब तक पूर्ण नहीं हो पाती जब तक यह प्रेम और आनंद का भावात्मक रूप धरण नहीं कर लेती इंद्रिय आश्रित मन को सब मे सर्व सुंदर का सम रस प्राप्त करना होगा हृदय को सब के लिए सम प्रेम तथा सब में सम आनंद अनुभव करना होगा आशा और भय, हर्ष और शोक, राग और द्वेष, संतोष, असंतोष आदि समस्त आवेश हमारी मुक्त अंतरात्मा से अलग हो जाते है योग में पुरुष संकल्प का पस्वामी भी बन जाता है और उसका संकल्प अयुक्त उपभोग के स्थान पर चैत्य सत्ता के युक्त उपभोग कि स्थापना करने का होता है उसके संकल्प को प्रकृति पूरा करती है जो कामना और वासना का उपादान था वह शुद्ध, सम और शांत प्रगाढ़ प्रेम, आनंद और एकत्व रूपी सत्य वस्तु में परिणत हो जाता है । वास्तविक आत्मा प्रकट हो उठती है। और कामनामय मन के द्वारा खाली किए गए स्थान पर प्रतिस्ठित हो जाती है। गुरु गोरक्षनाथ ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है-

उदासीन: सदा शांत: स्वस्थोन्तनिर्ज़भासक:।
महानन्दमयों धीर: स भवेत सिद्धयोरीराट ।।

अर्थात जो साधक विषय प्रपंचों से दूर हो गया है, इन से सदा उदासीन रहता हुआ सदा शांत भाव से सम्पन्न रहता है । जो स्वरूप में स्थित रहकर उसका चेतन रूप से प्रकाशक होता है जो सच्चिदानन्द रूप से कूटस्थ एवं असंग रहता है वही साधक सिद्धयोगिराट हो जाता है । उपरोक्त श्लोक मे यही समझाया गया है। की उदासीनता अथवा साम्यता तभी प्राप्त हो सकती है जब व्यक्ति विषयों के प्रपंच से दूर हो जाय । ऐसा होना प्रत्याहार से ही संभव है चूंकि प्रत्याहार ही साधक को विषयों से दूर करता हुआ उसमें अंतर्मुखताका विकास करता है। इस प्रकार के साम्य भाव एवं अंतर्मुखी स्वभाव से ही निर्द्वंदता भी विकसित होती है। इसे हठ योग में इस प्रकार उल्लेखित किया गया है -

> "परिपूर्ण: प्रसन्नात्मा सर्वासर्वपदोदित:।
> विशुद्धो निरभरानन्द: स भवेत सिद्ध योगिराट"।।

स्पष्ट है कि जो अखंड चेतन रुप सदा सर्व विध द्वंदों से दूर रहता हुआ प्रसन्न रहता है जो समस्त जगत प्रपंच आदि से दूर रहकर नित्य चेतन रुप में अधिष्ठित रहता है एवं जो निर्विकार एवं आनंदरूप है वही साधक लोक में सिद्धयोगिराट होता है। योग हेतु समाधि में स्थित रहते हुये कैवल्य पथ पर अग्रसर होने हेतु निर्द्वंद होने का लक्ष्य इंद्रियों के विषयों से तटस्थ होते हुये साम्य विकास से प्राप्त होता है । इसके लिए निवृत्ति के मार्ग पर बढ़ना आवश्यक है । जीवन पद्धयती को मनीषियों ने दो भागों में विभक्त किया है - प्रवृत्ति मार्ग एवं निवृत्ति मार्ग।

प्रवृत्ति मार्ग स्वयं को भूलाने का मार्ग है और निवृत्ति मार्ग स्वयं को पहचानने का मार्ग है । प्राकृतिक नियमों के अनुसार जैसे जैसे हम विषयों में लिप्त होते है भोग मार्ग मे आगे बढ़ते है अर्थात प्रवृत्ति मार्ग में आगे बढ़ते है वैसे - वैसे स्वयं कि चेतना छोड़ते जाते है । यह अनुभव हम अपने जीवन के साधारण कार्यों में कर सकते है । निवृत्ति मार्ग मे स्वयं को पहचानने के मार्ग में जब हम बढ़ते है और आत्म- निरीक्षण एवं सजगता के द्वारा विषयों से दूर हटते है, तब हमारे भीतर बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास होता है एक आंतरिक संतुलन कि स्थिति कायम होती है, तब हम अपने वास्तविक रूप को धीरे- धीरे पहचानने लगते है और उस मार्ग में आगे बढ़ते - बढ़ते पूर्णाहुति होती है समाधि कि स्थिति में समाधि निर्द्वंद रहते हुये तटस्थता के विकास द्वारा ही संभव है जो एकाग्रता द्वारा स्थिरता के पश्चात ही कैवल्य मे परिणत होती है।

निष्कर्षत: राजयोग की एकाग्रता चार क्रमिक अवस्थाओं मे विभक्त है, इसमे से आरंभिक अवस्था है मर उस न और इंद्रियों दोनों को बाह्य वस्तुओं से पीछे खी च (प्रत्याहार) कर अन्य सब विचारों और मानसिक क्रियाओं को त्याग कर चित्त को एकाग्रता से एक विषय पर स्थिर करना (धारणा) इसके बाद है मन का इस विषय मे सतत निमग्न रहना (ध्यान) है । अंतिम है चेतना का पूर्ण रूप से अंतर्मुखी हो जाना, जिसके द्वारा यह समाधि के एकत्व मे पहुचकर समस्त मानसिक क्रिया से बेसुध हो जाती है । उस स्थिति में वह अपनी पूर्ण निस्तब्धता में वह शुद्ध सत्व स्वरूप पुरुष पर ही विचार कर सकता है । धारणा, ध्यान एवं समाधि (जिनहे एक ही विषय में केन्द्रित होने पर संज्ञा दी जाता है) में चिरस्थायित्व योग की अनिवार्य है किन्तु विषय -संलिप्तता इसमे प्रमुख बाधा है इंद्रियों को विषयों से विमुख करते हुये उसे चित्त में तदाकार करना इसकी प्राथमिक आवश्यकता है जिसके लिए प्रत्याहार का अभ्यास अति आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हरिकृष्ण दास गोयंदका, पातंजलिकृत योग

दर्शन, गीतप्रेस (उ.प्र.), सं॰ 2064
2. डॉ. कविता भट्ट, योग परंपरा में प्रत्याहार, किताब महल, दिल्ली 2019
3. डॉ. कविता भट्ट, योग दर्शन में प्रत्याहार द्वारा मनोचिकित्सा, किताब महल, दिल्ली 2019
4. डॉ. एम. हिरियन्ना, भारतीय दर्शन कि रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1965
5. स्वामी विवेकानंद, राजयोग, रामकृष्ण आश्रम नागपुर मार्ग, 1990
6. डॉ. श्याम सुंदर पाल, योग प्रदीपिका, आर्यन प्रकाशन दिल्ली, 2018
7. परमहंस स्वामी अनंत भारती, सिध्दसिद्धान्तपद्धयती, चौखम्भा ओरियंटालिया दिल्ली, 2017
8. स्वामी महेशानंदजी एवं अन्य, शिव सहिंता, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावला पुणे (महाराष्ट्र)
9. गोरक्ष नाथ, सिद्ध सिद्धांत पद्धयती
10. (महर्षि घेरण्ड, घेरण्ड संहिता
11. स्वामी स्वातमाराम हठ प्रदीपिका
12. महर्षि पतंजलि, पातंजलयोगसूत्र